1970s का शांतिकुंज एवं आरंभिक दिन

महाशक्ति की लोकयात्रा

परमपूज्य गुरुदेव के हिमालय प्रस्थान के बाद माताजी के संपूर्ण जीवन में तप की सघनता छा गई। इस तप की ऊर्जा के स्पंदनों से शांतिकुंज का कण-कण अलौकिक दिव्यता से प्रकाशित हो गया। भगवान महाशिव की भांति गुरुदेव हिमालय की गहनताओं में अपनी आत्मचेतना के कैलाश शिखर पर तपोलीन थे और भगवती आदिशक्ति की भांति माताजी अपनी अंशभूता शक्तियों के साथ शांतिकुंज की दिव्य भूमि में साधनालीन थीं।

धन्य थे वे लोग जिन्होंने उन दिनों, कुछ क्षणों के लिए ही सही, शांतिकुंज में आकर अथवा रहकर माताजी को निहारा, उनके साथ कुछ पल अथवा दिन बिताए । बड़भागी वे भी थे, जो अपनी भावनाओं की गहराइयों में, इन पलों में उस अलौकिकता का साक्षात्कार कर रहे थे, सचमुच ही वह सब अलौकिक था। सौभाग्यशाली तो हम भी कोई कम नहीं हैं जो इस दिव्यता का अनुभव अपने अन्तर्चक्षुओं से कर रहे हैं। हम में से असंख्य परिजनों ने गुरुदेव और वंदनीय माताजी के दर्शन तक नहीं किये हैं लेकिन इन लेखों के माध्यम से एक ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास किया गया है कि दोनों दिव्य आत्माओं के चरणों में ही बैठा अनुभव कर रहे हैं।

आज का शांतिकुंज और उन दिनों के शांतिकुंज में ज़मीन आसमान का अंतर् है।   उन दिनों शांतिकुंज के आस-पास कहीं भी मनुष्यों की भीड़ और वाहनों, मोटरगाड़ियों का जमघट नहीं दिखाई देता था । सब ओर एक गहरी आध्यात्मिक शांति का ही वास था । शांतिकुंज के अंदर भी आज दिखाई दे रहे भवनों का विस्तार और कार्यकर्त्ताओं की भारी संख्या जैसी कोई भी चीज़ न थी। बस मुश्किल से तीन कार्यकर्त्ता थे। "शारदा एवं रुक्मिणी" नाम की दो महिलाएं भोजन आदि में सहयोग देने के लिए थीं। इस शुरुआती दौर में माताजी के साथ रहने वाली 6 बालिकाएं भी थीं जिनकी संख्या बाद में बढ़कर 12 हो गई थी। इनकी पवित्रता, सरलता और गायत्री साधना के प्रति इनके समर्पित भाव को देखकर ऐसा लगता था जैसे माताजी ने स्वयं अपनी प्राणशक्ति को विभाजित कर ये कौमारी स्वरूप बना रखे हैं। इन बालिकाओं के पठन-पाठन, खान-पान, सार-संभाल आदि की सारी व्यवस्था वे स्वयं करती थीं। ये बालिकाएं उनके निर्देशन में अपने दैनिक काम-काज के अलावा अखण्ड दीप की सिद्ध ज्योति के सान्निध्य में साधना करती थीं। तीन-चार कमरों वाला यह शांतिकुंज प्राचीन ऋषियों का तपोवन लगता था। मन को मोह लेने वाले हरे-भरे कुंजों की छाया, कुछ

थोड़े से ही सही लेकिन फलदार और छायादार पेड़ सब मिलकर यहां के वातावरण में बड़े ही निर्मल सौंदर्य की सृष्टि करते थे। शोर जैसी कोई चीज़ यहां थी ही नहीं। आवाज़ों के नाम पर या तो कभी माताजी के सान्निध्य में रहने वाली बालिकाओं की हल्की-सी मृदु-मंद हंसी बिखर जाती यां फिर जब-तब गाय रंभा देती लेकिन ये सब भी वातावरण की शांति में मधुरता ही घोलते थे। तब दिन में भी सुनाई देने वाली मां गंगा के प्रवाह की कल-कल ध्वनि आश्रम के वातावरण को स्वर्गीय संगीत से मधुमय बनाती थी। आगंतुक प्रायः नहीं थे, कभी कभार महीनों में कोई एक-आध व्यक्ति आ जाए तो बहुत थे । आश्रम में माताजी व यहां के थोड़े से निवासियों के लिए रोज़मर्रा की चीज़ों जैसे सब्जी-तरकारी आदि की व्यवस्था कार्यकर्त्ता हरिद्वार शहर यां ज्वालापुर जाकर करते थे। यह जाना भी प्रायः पैदल ही होता था। हां कभी-कभी थोड़ी-बहुत दूर के लिए बस सुलभ हो जाती थी।

माताजी की दिनचर्या में तप साधना के अलावा अपने परिजनों के पत्रों के उत्तर देना, अखण्ड ज्योति पत्रिका के संपादन की व्यवस्था करना, सभी के भोजन का समुचित रूप से इंतजाम करना शामिल था। इन सभी कामों के साथ वे अपने साथ रहने वाली बालिकाओं

के लिए कुछ ऐसी व्यवस्था भी जुटाती थीं, जिससे कि उनको अपने घर का अथवा माता-पिता का अभाव न खले। इस व्यवस्था में उन्हें कुछ-कुछ नई विशेष चीजें अपने हाथों से बनाकर खिलाना आदि शामिल था। इन सब दैनिक कार्यों में माताजी पर्याप्त व्यस्त रहती थीं। उनकी इस व्यस्तता को देखकर आस-पास रहने वाले यह समझ ही न पाते थे कि वे साधना कब करती हैं, करती हैं भी कि नहीं और यदि करती हैं तो क्या करती हैं। हालांकि अंतःकरण को कुरेदने वाले इन सवालों की भ्रांति में पड़ने वाले लोग माताजी की आध्यात्मिक शक्ति व सिद्धियों से अवगत थे फिर भी अपनी ऊहापोह भरी भ्रांति में वे सत्य को समझने में असमर्थ थे।

माताजी की रहस्य भरी साधना

माताजी की साधना पर प्रश्न करते एक दिन एक परिजन ने, जो अभी भी जीवित हैं, परंतु जिन्हें अपना नाम उजागर करने में संकोच है, बड़ी ही हिचकिचाहट के साथ माताजी से पूछ लिया, "माताजी, आप तो स्वयं सिद्धिदात्री हैं, फिर आपको साधना करने की आवश्यकता क्या है?"

इस सवाल के बाद थोड़ा डरते-डरते उन्होंने यह भी पूछा कि आप अपनी साधना कब करती हैं, कुछ पता ही नहीं चलता। अंतर्यामी माताजी उसकी इन बातों पर पहले तो मुस्कराईं, हल्के-से हंसीं फिर थोड़ा-सा रुककर बोलीं, क्या करेगा यह सब जानकर, लेकिन उसे बड़ा मायूस और उदास देखकर वह समझाने लगीं,

"देख बेटा! तू इन बातों को अभी ठीक से समझ नहीं सकता। तेरी आंखें अभी बड़ी कमजोर हैं, वे हमारी साधना को देख नहीं सकतीं। फिर भी अगर तू ज़िद करता है, तो चल थोड़ा-बहुत बताए देती हूँ । देख, ये लड़कियां और मैं मिलकर साधना करती हैं। इन लड़कियों की साधना स्थूल है और मेरी सूक्ष्म । मैं जो कुछ भी करती हूं वह सूक्ष्म शरीर से, सूक्ष्मलोक में करती हूँ। साधारण लोगों को दिखाई न देने और समझ में न आने पर भी इस तरह से ब्रह्मांड में बिखरे-फैले शक्ति प्रवाहों में से अनंत शक्ति का अर्जन होता है। यह सूक्ष्मशरीर की ऐसी साधना है जिसकी चर्चा साधना की किसी किताब में नहीं है लेकिन इस तरह से किए जाने वाले शक्ति अर्जन की सार्थकता तभी है जब उसके अवतरण के लिए उचित आधार-भूमि हो। इस आधार-भूमि का निर्माण इन लड़कियों द्वारा

मेरी देख-रेख में किए जा रहे गायत्री पुरश्चरणों की श्रृंखला से हो रहा है। पता नहीं तेरी समझ में ये सब बातें कितनी आएंगी लेकिन इतना जान ले कि यहां इन दिनों अद्भुत हो रहा है। इस पवित्र भूमि की पात्रता का विस्तार करके इसे "आध्यात्मिक ऊर्जा का भंडारगृह" बनाया जा रहा है। इसका उपयोग आगे चलकर होगा। तूने एक बात और पूछी थी, माताजी आपको साधना की क्या आवश्यकता है? तो बेटा, साधना मेरे लिए आवश्यकता नहीं, मेरा स्वभाव है। इसकी आवश्यकता मुझे नहीं तुम सब बच्चों को है। अब बच्चे तो बच्चे ठहरे, जाने-अनजाने उनसे न जाने कितने पाप-ताप हो जाते हैं और जब उनके परिणाम सामने आते हैं तो कहते हैं, माताजी बचाओ। बच्चे कैसे भी हों, धूल-मिट्टी, मल-मूत्र से सने हों या साफ-सुथरे हों, मेरे लिए तो बच्चे ही हैं। मैं उनकी मां हूँ । वे जैसे भी हैं,मुझे बहुत प्यारे हैं। अपने इन बच्चों को आफत-मुसीबत से बचाने के लिए मुझे बहुत कुछ करना पड़ता है। गलती बच्चे करते हैं, प्रायश्चित उनकी मां होने के कारण मुझे करना पड़ता है। इसी के चलते निरंतर साधना करती रहनी पड़ती है।"

सुनने वाले की आंखें माताजी की बातों को सुनकर भर आईं। वह उनके वात्सल्य के अनंत विस्तार को देखकर हतप्रभ था। माताजी अपने भावों में डूबी कहे जा रही थीं,

"बेटा, मैं तो इस भूमि का, यहां के आस-पास की बहुतेरी भूमि का कायापलट करने में लगी हुई हूं। जहां तक मेरे संकल्प का विस्तार है, यह जमीन आध्यात्मिक ऊर्जा का अक्षय कोष बन जाएगी। आगे चलकर यहां विस्तार होगा। यहां से बहुत बड़े-बड़े काम होंगे। उस समय देखने वाले लोग हैरान होंगे कि ये शांतिकुंज के सारे काम स्वयं कैसे हो जाते हैं। शांतिकुंज जो काम अपने हाथ में लेता है, वह बस स्वयं ही होता चला जाता है। दरअसल यह स्वयं नहीं, उस आध्यात्मिक ऊर्जा के एक अंश से होगा जिसे मैं आज जमा कर रही हूं। यहां जो लोग आएंगे और भावभरी श्रद्धा के साथ यहां रहकर साधना करेंगे,अनायास उनके प्राण प्रत्यावर्तित हो जाएंगे। आगामी दिनों में यहां आने वाले श्रद्धावान साधक अपने प्रत्यावर्तित प्राणों को अनुभव करेंगे।"

अपनी साधना की रहस्य कथा के कुछ अंशों को उजागर करते हुए माताजी अचानक उठ खड़ी हुईं। शायद उन्हें अपने भविष्यत् कार्यों को गति देनी थी।

प्राण प्रत्यावर्तन विषय पर हमने जुलाई 2021 में सात लेखों की एक अद्भुत शृंखला अपने सहकर्मियों के लिए प्रस्तुत की थी। हमारी वेबसाइट आप इस श्रृंखला को फिर से देख सकते हैं लेकिन यहाँ पर हम केवल इतना ही कहेंगें कि प्राण प्रत्यावर्तन का अर्थ ठीक उसी तरह Transfer of Life Energy होता है जैसे Transfer of Property होता है। माता पिता जीवन भर तप कर-कर के सम्पति अर्जित करते हैं और वह सम्पति संतान को transfer हो जाती है।

प्रत्यावर्तित हो रहे प्राणों से माताजी और गुरुदेव के बीच भाव-संदेशों का आदान-प्रदान होता रहता था। श्वेत-श्वेत हिमशिखरों वाले हिमालय की गहनताओं में तपोलीन गुरुदेव और हरिद्वार की दिव्य साधना स्थली शांतिकुंज में साधनालीन माताजी एक-दूसरे की परिस्थिति एवं भावदशा को अपने हृदय की गहराइयों में सतत अनुभव करते थे। दोनों के कर्त्तव्य कठोर थे, दोनों की साधना बहुत ही कठिन थी। माताजी, गायत्री परिवार के अपने बच्चों को प्यार-

दुलार देने, उनकी कष्ट-कठिनाइयों में भागीदार होने के साथ शांतिकुंज के भविष्य के लिए आध्यात्मिक ऊर्जा का अक्षय कोष जुटाने में जुटी थीं। इसी अक्षय कोष को वर्णित करती एक वीडियो आप हमारे चैनल पर देख सकते हैं। गुरुदेव इन दिनों उन आसुरी शक्तियों को प्रचंड टक्कर देने में जुटे थे जो पड़ोसी देश की कुटिल गतिविधियों का बाना पहनकर हमारे देश पर चढ़ आई थीं।

1971 का भारत-पाक युद्ध

1971 की सर्दियों का आरम्भ हमारे देश पर काफी भारी पड़ रहा था । सरहदों पर सेनाएं अलग-अलग मोर्चों में शत्रुओं से जूझ रही थीं। पूर्वी पाकिस्तान में हो रहे अमानवीय अत्याचारों के कारण पलायन कर भारत भागे आ रहे शरणार्थियों की समुचित सहायता करने के लिए हमारे देश के बहादुर सैनिक प्रतिबद्ध थे। समूचे राष्ट्र के लिए यह बड़ा कठिन दौर था। समस्याओं के इस जटिल चक्रव्यूह के अनेक चक्र थे। राष्ट्र के कर्णधारों को कूटनीतिक मोर्चे पर घेरने की कोशिश हो रही थी। आज दुनिया का सबसे शक्तिशाली कहा जाने वाला देश उन दिनों शत्रुओं को हर तरह से सहायता पहुंचाने में जुटा था, यहां तक कि उसका सर्वशक्तिमान समझा जाने वाला सातवां बेड़ा भी भारत की ओर बढ़ा चला आ

रहा था। छोटे-बड़े जो भी उस समय युद्ध की खबरों को सुनते थे, आपस में यही पूछते थे,सोचते थे,अब क्या होगा? अचानक घटनाचक्रों में कुछ ऐसे चमत्कारी परिवर्तन हुए कि बाज़ी एकदम पलट गई। नया इतिहास नहीं, नया भूगोल भी रचा गया। दुनिया के इतिहास में शायद पहली बार 93000 हथियारबंद सेना ने अपने जनरल के साथ घुटने टेककर आत्मसमर्पण किया। विश्व के नक्शे में नई लकीरें खिंची, भूगोल में एक नए देश के मानचित्र ने आकार लिया। भारत ने विजय दिवस मनाया और बांग्लादेश ने अपना जन्मदिवस । देश के कर्णधारों से लेकर सामान्य नागरिक तक ने अनुभव किया कि यह तो सब कुछ चमत्कार जैसा हो गया। कैसे लौटा सातवां बेड़ा? कैसे किया दुश्मन की इतनी बड़ी फौज ने आत्मसमर्पण? इन सवालों का जवाब सामान्य बुद्धि खोजने में असमर्थ थी । बस सभी ने यही कहा कि “यह तो भारत की आध्यात्मिक दिव्य शक्तियों का चमत्कार है।” जिन दिनों यह सब हुआ, उन्हीं दिनों एक परिजन डॉ. अमल कुमार दत्ता जो अब शांतिकुंज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता हैं और ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में रहते हैं, माताजी से मिलने आए (दत्ता भाई साहिब से हमारा भी कई बार मिलन हो चुका है), मिलने पर उन्होंने माताजी से कहा,

“माताजी आपने सुना, भारत ने युद्ध जीत लिया।” उत्तर में माताजी बड़े धीरे से बोलीं, “हां बेटा, सुन भी लिया और देख भी लिया।" परिजन को थोड़ा अचरज हुआ कि यह सुनना तो ठीक पर देखने का क्या मतलब है? उन्होंने माताजी से सारी बात का खुलासा करने की ज़िद की। उनकी इस ज़िद पर माताजी कहने लगीं,

> “अभी जो युद्ध हुआ है वह दो तरह से लड़ा गया हैं । एक तो हमारी सेनाओं ने मोर्चे पर जांबाजी दिखाई। सेनाओं की इस बहादुरी की जितनी सराहना की जाए कम है लेकिन इस युद्ध में हिमालय की ऋषि सत्ताओं ने भी जबरदस्त और प्रचंड रूप से हिस्सा लिया, इसमें गुरुदेव की मुख्य भूमिका रही। उन्होंने अपनी तप शक्ति से शत्रु की षड्यंत्रकारी योजनाओं को तार-तार करके रख दिया। मैंने यह सब प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देखा।"

उन दिनों के अनेक संस्मरणों में एक संस्मरण और है, जिसे बाद में माताजी ने स्वयं अपने मुख से बताया। इस संस्मरण से ममतामयी मां का वात्सल्य प्रकट होता है। उन्होंने बातचीत के क्रम में अपनी यादों को कुरेदते हुए कहा,

"जब गुरुजी 1971 में हिमालय गए थे, तब उम्मीद यही थी कि अब वे शायद न लौटें। बांग्ला देश वाली लड़ाई के बाद उनकी योजना भी कुछ ऐसी ही थी। पर इधर सारे लोग परेशान थे। गुरुजी कब लौटेंगे, जो भी चिट्ठी लिखता, वह यही सवाल करता, गुरुजी कब वापस लौटेंगे, हम सब से कब मिलेंगे। बच्चों की इस विकलता ने मुझे बड़ा बेचैन और विकल कर दिया। अपने कष्ट की तो मुझे कभी चिंता नहीं होती, वह चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, लेकिन अपने बच्चों के कष्ट मुझ से सहे नहीं जाते। उन्हें दुःखी-परेशान होते मैं नहीं देख सकती। आखिर मां हूँ न, बच्चों की इस परेशानी के कारण मेरी बेचैनी इतनी बढ़ गई कि गुरुजी से प्रार्थना करते हुए मेरी चीख निकल गई। इस चीख के कारण कुछ लोगों ने समझ लिया कि माताजी बीमार हैं, लेकिन गुरुजी ने सही बात समझी और वे वापस आ गए। उन्होंने मेरी प्रार्थना को स्वीकार करके अपनी योजना परिवर्तित कर ली।"

वापस आने के बाद गुरुदेव सबसे पहले सुदूर वास करने वाले प्रवासी परिजनों की पुकार का उत्तर देने के लिए अफ्रीका गए। सन् 1972 में गुरुदेव ने अपनी यह यात्रा समुंद्री जहाज़ से संपन्न की।

उनका यह प्रवास ऊपरी तौर पर साधारण रहने पर भी आंतरिक रूप से कई असाधारण अनुभूतियों से भरा रहा। अफ्रीका यात्रा पर भी हमने कई विस्तृत लेख लिखे हैं जो हमारी वेबसाइट में सुरक्षित हैं, इन्हे आप कभी भी पढ़ सकते हैं, उनमें से एक लेख का लिंक इधर दे रहे हैं। इसी लिंक में अफ्रीका यात्रा से सम्बंधित और भी कई महत्वपूर्ण लिंक मिल जायेंगें।

अफ्रीका से वापिस लौटने पर उन्होंने सन् 1973 में पांच दिवसीय प्राण प्रत्यावर्तन सत्र आयोजित किए। शांतिकुंज में आयोजित होने वाले यह सबसे पहले साधना सत्र थे। इसमें देशभर के परिजनों ने भाग लिया और अपने प्राणों के प्रत्यावर्तन की अनुभूति प्राप्त की। इन परिजनों में से अनेक आज शांतिकुंज और ब्रह्मवर्चस में वरिष्ठ कार्यकर्त्ता हैं, जो शांतिकुंज में आकर नहीं भी रह सके, वे भी अपने-अपने क्षेत्र में जी-जान से मिशन की गतिविधियों में जुटे हैं।

प्राणों का यह प्रत्यावर्तन सब तरह से अनूठा था। इसमें पांच दिनों के एकांतवास में साधकगण गुरुदेव द्वारा बताई गई कई तरह की सरल किंतु प्रभावकारी साधनाएं करते थे। इन साधनाओं का उद्देश्य साधकों के प्राणों को उच्चस्तरीय आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए ग्रहणशील बनाना था ताकि वे गुरुदेव के *महाप्राण के किसी लघु*

अंश को ग्रहणशील बनाना था, ताकि वे गुरुदेव के महाप्राण के किसी लघु अंश को ग्रहण व धारण करने में समर्थ हो सकें। साधना की इस अवधि में प्रत्येक साधक को गुरुदेव के संग-सुपास व चर्चा-परामर्श का भरपूर मौका मिलता था। इस साधना में साधकों को भोजन व औषधि कल्प के माध्यम से माताजी की प्राण-सुधा पीने की मिलती थी। वे अपने बच्चों को इन्हीं माध्यमों से अपने तप का महत्त्वपूर्ण अंश देकर अनुग्रहीत करती थीं। इन प्रत्यावर्तन शिविरों से लेकर लगभग एक दशक की अवधि तक शांतिकुंज में अनेक तरह के साधना सत्रों का आयोजन संचालन हुआ। इनमें भागीदारी करने वाले देशभर के लाखों साधकों ने परमपूज्य गुरुदेव के साथ माताजी की तपःशक्ति और योग विभूतियों का साक्षात्कार किया। ये सभी सर्वसिद्धिदात्री मां द्वारा किए गए विविध-विध अनुदानों से लाभान्वित हुए।

यह अवधि शांतिकुंज के स्वर्णिम कालों में से एक थी इसी अवधि 1978 में माताजी को सहयोग देने के लिए शैल दीदी एवं डॉ. प्रणव पंड्या जी का आगमन हुआ। अध्यात्म के वैज्ञानिक आयाम को प्रतिष्ठित करने के लिए ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना हुई। इसी के साथ आदिशक्ति जगदंबा को युगशक्ति के रूप में

प्रतिष्ठित करने के लिए परमपूज्य गुरुदेव ने एक नया अभियान छेड़ा। यह इस सत्य का उद्घोष था कि युगनिर्माण मिशन की सूत्र संचालिका आदिशक्ति स्वयं हैं। इस अभियान को गति देने के लिए गुरुदेव ने स्वयं देशभर की यात्राएं कीं। पहले चरण में संपूर्ण देश के चुने हुए पवित्र तीर्थ स्थानों पर चौबीस शक्तिपीठ स्थापित हुए। बाद में इनकी संख्या बढ़ती गई। गुरुदेव के इस प्रवासकाल में माताजी ने मिशन और शांतिकुंज की सूत्र संचालिका होने का दायित्व संभाला।

हर लेख की भांति यह लेख भी बहुत ही ध्यानपूर्वक कई बार पढ़ने के उपरांत ही आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, अगर फिर भी अनजाने में कोई त्रुटि रह गयी हो तो हम करबद्ध क्षमाप्रार्थी हैं। पाठकों से निवेदन है कि कोई भी त्रुटि दिखाई दे तो सूचित करें ताकि हम ठीक कर सकें। धन्यवाद्